ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-2* Issue-9* December- 2017
Anthology : The Research

# डॉ. सूर्यबाला की कहानियों में स्त्री–पात्रों की 'परिपक्वता'

**शेषकुमारी बघेल**
टीजीटी,
हिन्दी विभाग,
केन्द्रीय विद्यालय,
क्रमांक–1, ग्वालियर

**रामकुमार सिंह**
पीजीटी
हिन्दी विभाग,
केन्द्रीय विद्यालय,
मुरैना

**सारांश**

डॉ. सूर्यबाला की अधिकतर कहानियों में स्त्री–पात्र के रूप में जिस प्रकार की स्त्री की अभिव्यक्ति हुई है, वह प्रथम–दृश्टया भावनात्मक व बौद्धिक दृष्टि से परिपक्व दिखाई देती है। यह पात्र चाहे शिक्षित हो या अशिक्षित किंतु उसकी अपनी **'मैच्योरिटी'** है। यही बात वर्तमान **'स्त्री–विमर्श'** या नारी विषयक–चिंतन को एक नया आयाम देती है। इस पत्र के माध्यम से डॉ. सूर्यबाला की विभिन्न कहानियों में विभिन्न स्त्री–पात्रों की परिपक्वता का विश्लेषण अभीष्ट है।

**मुख्य शब्द** : Please add some keywords

**प्रस्तावना**

यद्यपि 'सूर्यबाला' नाम किसी परिचय का मोहताज नहीं है, फिर भी यहाँ बताते चलें कि 1975 में डॉ. सूर्यबाला का पहला ही उपन्यास 'मेरे संधि पत्र' विशेष रूप से चर्चित हुआ। इस काल से अब तक न केवल उनकी कथा–साहित्य साधना अनवरत् जारी है। उन्हें अनेक सम्मानों से सम्मानित और पुरस्कारों से पुरस्कृत किया जा चुका है। दूरदर्शन के लोकप्रिय धारावाहिकों 'पलाश के फूल','न किन्नी न','सौदागर दुआओं के', 'एक इन्द्रधनुष जुबेदा के नाम', 'सबको पता है', 'रेस', तथा 'निर्वासित' आदि के रूप में उनकी कहानियों का उपयोग इसे लोकप्रिय और मर्मस्पर्शी होना सिद्ध करता है।[1]

**'परिपक्वता' : सैद्वांतिक–आशय**

'बृहत् हिन्दी कोश' के अनुसार 'परिपक्व' का आशय है– ''पूर्णतया पक्व, अच्छी तरह पका हुआ, अच्छी तरह पचा हुआ, सम्यक् जीर्ण, जिसका पूरा विकास हो चुका हो, प्रौढ़, जिसमें कच्चापन न हो (बुद्धि,ज्ञान), पूर्णतया कुशल, परिपाक को प्राप्त (रस)''[2] तथा 'परिपक्वता' का आशय है–'परिपक्व होने का भाव',जबकि 'ऑक्सफोर्ड हिन्दी–इंग्लिश–डिक्सनरी' के अनुसार 'परिपक्वता' अंग्रजी रूपांतरित आशय जिस रूप में प्रचलित है उससे भी समीक्ष्य–परिप्रेक्ष्य में सहायक माना जा सकता है इसके अनुसार अर्थ है–"1-Fully cooked, or prepared, state, 2- Ripeness , Maturity 3- Wide experience, shrewdness"[3]

इस प्रकार हम पाते हैं कि विवेच्य परिप्रेक्ष्य में स्त्री–पात्र की वह विकसित मनोदशा जिसमें कच्चापन या ओछापन नहीं हो, वह इस परिपक्वता की कोटि में माना जायेगा।

**समीक्ष्य–कहानियों में प्रकीर्ण स्त्री–पात्रों की 'परिपक्वता' की अभिव्यक्ति**

'न किन्नी न' की किन्नी एक ऐसी संवदेनात्मक और भावनात्मक परिपक्व छाप पाठक पर छोड़ती है कि पाठक उसकी ओर से मुखर–प्रवक्ता बन बैठता है। पाठक चाहता है कि किन्नी विद्रोह प्रदर्शित करे लेकिन किन्नी जिस परिपक्वता में ढाली गई पात्र है, वह उसे ऐसा करने से रोकती है, अन्यथा किन्नी के हिस्से में सदैव आने वाली उतरने अंततः उसके विवाह के मामले में भी 'उतरन'–पुरुष बनकर नहीं आतीं।

भावनात्मक ऊँचाईयों और अनुभूतियों के बाबजूद किन्नी एक परिपक्व चरित्र की युवती है। उसका कथन देखिए– *''और मैं ठीक समय पर पढ़ाई खत्म कर सीधी गरदन, सीधी चाल घर आ गई, बगैर किसी की तरफ ताके–झाँके। मुझे सचमुच खबर नहीं थी कि मैं अपने आँचल में कस्तूरी का एक छोटा सा टुकड़ा बाँधे चली आई हूँ।''*[4] कार्यस्थल पर भी

किन्नी की परिपक्वता अनूठी है। और समाज इसका लोहा मानता है। किन्नी का कथन दृश्टव्य है– *''मैं उसी कॉलेज में टीचर हो गई थी। **एक मेच्योर, जिम्मेदार**, नियम की पक्की और कड़क, अनुशासन–पसंद।''* किन्नी यह मैच्योरिटी उसके नितांत महत्वपूर्ण और निजी निर्णय के मामले में भी एक बड़े त्याग के रूप में सामने आती है जबकि वह विधुर आकाश के साथ विवाह के लिए अप्रत्याशित रूप से 'हाँ' लिखवा देती है।[5]

**'सुमिन्तरा की बेटियाँ'** कहानी की नायिका **सुमिन्तरा** यद्यपि किन्नी की तरह उच्च–शिक्षित नहीं है और शिक्षा के माध्यम से आने वाली परिपक्वता से उसे सहज ही रहित आंकलित किया जा सकता है, लेकिन अप्रत्याशित रूप से वह भी अपनी गजब की परिपक्वता का परिचय तब देती है जब उसका पति ढोढेलाल दूसरा व्याह रचाने की फिराक में होता है। गाँव वालों की फब्तियाँ सुनकर भी सुमिन्तरा अपना और अपने पति का सम्बन्धात्मक **'मान'** रखती है। और झूठ बोलती है। ताई व सुमिन्तरा का यह संवाद दृश्टव्य है[6] –

''क्यों री! ढोढेलाल की कोई
खोज–खबर?''
''लगी न''
''कैसै, चिट्ठी आई थी क्या?''
''न मारवाड़ी वासे से कोई आता था,
उससे खबर भेजी...''

कहानी अंत तक आते–आते सुमिन्तरा पाठकों की संवेदना इसी परिपक्वता के सहारे जुटा लेती है और उसको केन्द्र में रखकर पुरुष के प्रति जो पाठकीय आक्रोश है उसका शमन तब होता है जब उसकी बेटी, ढोढेलाल की दूसरी शादी की विदा के समय टैक्सी पर रेत–मिट्टी–कीचड़ फेंकती हुई कहती है **''ढोढे मर गिया, उठी लाश''** वास्तव में यह प्रतिक्रिया पुरुष के दोहरे चरित्र के प्रति परिपक्वता के उत्तर का पारितोषिक बनकर पाठकों की ओर से सुमिन्तरा को मिलता है। संभवतः मुखर विद्रोह करके वह यह हासिल नहीं कर सकती थी।

**'कात्यायनी–संवाद'** की **कात्या** के पति ने उसे सदैव प्रताड़ित किया, लेकिन जब वह आसक्त हो जाता है तो कात्या निरंतन उसके प्रति उपेक्षा या आक्रोश का भाव नहीं लाती है, यद्यपि यह कथा–साहित्य की पुरानी समर्पणशील और आदर्श नारी का दोहराव करने वाला चरित्र नहीं है, फिर भी एक जागरुक–उत्तर मिलता है। उसकी सहेली **'मेधा'** के रूप में पाठकीय संवेदना के साथ हुआ यह संवाद दृश्टव्य है [7]–

''क्यों लगी हो पिछले अठारह सालों
से इसके साथ?''
''क्यों कि इसे तो चाहिए था न! और
मैं देने लायक थी''.....
''देना ही था तो किसी सुपात्र को
देती!''
''सुपात्र के लिये देने वालों की कहाँ
कमी! देना तो उसे चाहिए न जिसे
और कोई देने वाला न हो ––''

इतने समर्पण के बाद भी यह चरित्र खुद को परम्परावाद के घेरे से निकालकर वर्तमान **'स्त्री–चर्चा'** की बहस से जोड़कर अपनी सामयिकता सिद्ध करता है। कात्या मेधा से जो कहती है वास्तव में वह वर्तमान 'स्त्री–आंदोलन' के सहारे कृत्रिम विमर्श होने से रोकने की प्रतिबद्धता है –

''मेधा, तुम से सिर्फ एक अनुरोध है। मेरे साथ जुड़ी इन सारी स्थितियों को तुम कभी किसी शोषित नारी की कहानी का नाम मत देना। मेरे पास कोई बाध्यता नहीं है शोषित, प्रताड़ित होने की। मुझे बेचारगी–भरे इन शब्दों से चिड़ है। मेरी आत्मा, मेरा विवेक जो कहता है, करती हूँ– तुम उसे दुर्बलता कहो या भीरुता– या आत्मयंत्रणा– स्वतंत्र हो तुम !'' [8]

**निष्कर्ष**

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि डॉ. सूर्यबाला के स्त्री पात्रों का **'विज़न'** और **'प्रतिरोध'** एक प्रकार की परिपक्वता व रचनात्मकता लिए हुए है, स्वयं लेखिका स्वीकारोक्ति इस पर विश्वसनीय ढंग से मुहर लगा देती है– *''गांव के हों या शहर के, पढ़े–लिखे हों या बेपढ़े, मेरे पात्र, विशेषकर स्त्री–पात्र थोड़े समझदार और परिपक्व होते हैं। इस समझदारी को आप उनका विजन या जेहन भी कह सकते हैं। ये पात्र ज्यादातर बला के स्वाभिमानी भी होते हैं''*[9] लेखिका की कहानियों के समर्थ नारी चरित्र भी नए तरह का पहलू लेकर आए हैं। लेखिका का स्पष्टीकरण है कि– *''सामर्थ्य को किसी चरित्र की विवकेशक्ति से आंका जाना चाहिए। विवेकसम्मत विद्रोह ही एक मेच्योर और सही अर्थों में समर्थ चरित्र की प्रतिष्ठा कर पाता है। बशर्ते उसमें जीवन की ठोस सच्चाईयों से जुड़ने की विश्वसनीयता हो''*[10]

**सन्दर्भ ग्रंथ सूची**

1. *'थाली भर चाँद'/ डॉ. सूर्यबाला/सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली/संस्करण–2006/प्रकाशक द्वारा परिचय फ्लेप अंकित विवरण के आधार पर*
2. *बृहत् हिन्दी कोष'/पृ.–653/(ज्ञानमण्डल लिमिटेड वाराणसी/संपा.–कालिका प्रसाद अन्य/ सप्तम– 2005)*

3. ऑक्सफोर्ड हिन्दी–इंग्लिश डिक्शनरी/पृ.–607 (R.S. Mc Gregor /ऑक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी प्रेस/26 वां इम्प्रेसन/ सन्–2007)
4. 'न किन्नी न' कहानी से/'थाली भर चाँद' संग्रह/पृ.–14 ('थाली भर चाँद'/डॉ सूर्यबाला/ सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली/संस्करण–2006)
5. ''रात बीती एक रीती उम्र की तरह। और सुबह होने पर मैंने माँ से कह दिया कि मौसी को 'हाँ' लिख दें।'' –वही/पृ.–25
6. 'सुमिन्तरा की बेटियाँ'/'सांझवती' संग्रह से/पृ. –17
(किताब–घर, नई दिल्ली/प्रथम–सन् 1995)
7. 'कात्यायनी–संवाद'/इसी शीर्षक से संग्रह/पृ. –115
(सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली/प्रथम–1996)
8. 'कात्यायनी–संवाद'/इसी शीर्षक से संग्रह/पृ. –123
(सत्साहित्य प्रकाशन, दिल्ली/प्रथम–1996)
9. 'मेरे प्रतिरोध' शीर्षक से सूर्यबाला/नया ज्ञानोदय/अगस्त–2006/पृ. 42
10. (मासिक/भारतीय ज्ञानपीठ/संपादक–प्रभाकर श्रोत्रिय)
11. 'आधुनिक कथा–साहित्य में नारी : स्वरूप और प्रतिमा'/ सूर्यबाला का लेख/पृ. 144/(सं. डॉ. उमा शुक्ल, डॉ. माधुरी छेड़ा/अरविंद प्रकाशन, मुम्बई/सन्–1995)।